

E-LECTURE 06
UNIT 4
HISTORY OF INDIA (650-1206 A.D.)
Dr. NANDANI PATHAK
SOS ARCHAEOLOGY DEPARTMENT
08.04.2020

राष्ट्रकूट राजवंश

राष्ट्रकूट राजवंश के शासकों ने बादामी के चालुक्यों के राज्य को नष्ट करके अपने साम्राज्य का निर्माण किया और प्रायः 223 वर्ष तक एक विशाल साम्राज्य की सत्ता का उपभोग करने के पश्चात् कल्याणी के चालुक्य-शासकों द्वारा नष्ट कर दिये गये। राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विचार प्रकट किये गये हैं। प्रारम्भिक राष्ट्रकूट अभिलेखों में उन्हें 'रट्ट' कहा गया है। इन्द्र तृतीय के नौसारी-अभिलेख में राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष को 'रट्ट-कुल-लक्ष्मी का उद्धारक' घोषित किया गया है। इस कथन की पुष्टि कृष्ण तृतीय के देवली तथा करहर अभिलेखों से भी होती है। इनमें रट्ट को इस राजवंश का आदि पुरुष कहा गया है। एम.सी.नन्दिमथ तथा अशोक के अभिलेखों में उल्लिखित 'रट्टिकों' की पहचान राष्ट्रकूटों से की है। कुछ के अनुसार वे महाराष्ट्र-निवासी थे और प्राचीन यादव-कुल सम्बन्धित थे, कुछ अन्य के अनुसार वे तेलुगू रेड्डी-वंश के थे, जबकि कुछेक उन्हें क्षत्री बताते थे। और कुछ अन्यो के अनुसार वे आन्ध्र-प्रदेश के किसान थे जिनको चालुक्य-शासकों ने विभिन्न स्थानों पर पैतक अधिकारी बना दिया था। परन्तु अधिकांशतया यह माना जाता है कि वे चालुक्य-शासकों के राष्ट्रों (जिलों) के प्रधान थे और राष्ट्रकूट उनका पद था। उनके पद के नाम पर ही उनके वंश का नाम राष्ट्रकूट पडा। डॉ. अनंत सदाशिव अल्तेकर ने अशोक के अभिलेखों में उल्लिखित 'रट्टिकों' का सम्बन्ध राष्ट्रकूटों से माना है जिनका मूल निवास स्थान कर्नाटक बताया है जहाँ से विभिन्न परिवार महाराष्ट्र जाकर बस गये थे।

1. विभिन्न शासक (Various Rulers)

सातवीं सदी में राष्ट्रकूट चालुक्य-शासकों के अधीन सामन्त थे। उनके वंश में से इन्द्र ने औरंगाबाद अथवा एलिचपुर में एक दृढ राज्य की स्थापना की। उसने एक चालुक्य राजकुमारी से विवाह करके अपनी स्थिति को सुदृढ किया। राष्ट्रकूटों की मान्यखेर शाखा का प्रथम उल्लेखनीय शासक इन्द्र द्वितीय (715-735 ई.) था। यह गुर्जर-चालुक्य राजा मंगलराज के अधीन एक सामन्त था।

दन्तिदुर्ग (735-758 ई.)-इन्द्र के उत्तराधिकारी दन्तिदुर्ग ने निर्बल चालुक्यों को परास्त करके इस वंश के साम्राज्य की नींव डाली। दन्तिदुर्ग 735 ई. में सिंहासन पर बैठा था और वह चालुक्य-शासक को अपना अधिपति मानता था। उसने चालुक्य-शासक विक्रमादि द्वितीय की ओर से अरबों और पल्लवों से युद्ध किया और सफल हुआ। 744 ई. में विक्रमादित्य की मृत्यु के पश्चात् उसने स्वयं के राज्य का विस्तार किया और नान्दीपुरी तथा मालवा पर आक्रमण करके मध्य-देश पर अपना अधिकार कर लिया। उसकी शक्ति में वृद्धि होने से चालुक्य-शासक कीर्तिवर्मन को ईर्ष्या हुई और उसने उसे दबाने का प्रयत्न किया। इसके परिणामस्वरूप दोनों में युद्ध हुआ जिसमें दन्तिदुर्ग की विजय हुई। इस युद्ध के पश्चात् कीर्तिवर्मन भाग गया और दन्तिदुर्ग ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार चालुक्य राज्य को नष्ट करके दन्तिदुर्ग ने राष्ट्रकूट-साम्राज्य की नींव डाली।

कृष्णा प्रथम (758-773 ई.)-दन्तिदुर्ग के पश्चात् उसका पुत्र कृष्णा प्रथमशासक बना। चालुक्य-शासक कीर्तिवर्मा ने एक बार फिर अपने राज्य को प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु वह पूर्णतया असफल हुआ। कृष्णा प्रथम ने मैसूर के गंग-राज्य पर अधिकार किया, वेंगी के पूर्वी चालुक्यों को परास्त करके उनके राज्य (हैदराबाद राज्य) पर अधिकार कर लिया और कोंकण को अपने राज्य में सम्मिलित किया। रट्टराज के ताम्रपत्र लेख खारेपाटन के अनुसार कृष्णा प्रथम ने दक्षिणी कोंकण राज्य को जीतकर उसे सणफुल्ल नामक अपने सामन्त को राज्य सौंप दिया था। कुछ समय बाद वहाँ पर शीलाहार राजवंश की स्थापना की थी। औरंगाबाद में कृष्णा प्रथम ने अपने अनुज नन्नगुणावलोक को अपना प्रतिनिधि शासक नियुक्त किया। कृष्णा प्रथम राष्ट्रकूट राजवंश का एक महान् शासक था। उसने अपने पराक्रम के बल पर उत्तराधिकार में प्राप्त हुए राष्ट्रकूट राज्य की सीमा को लगभग तीन गुना विस्तृत कर दिया उसने सुदूर दक्षिणी भारत तक सामरिक अभियान करके काँची के पल्लवों को भी पराजित किया था। महान विजेता के साथ-साथ कृष्णा प्रथम एक कुशल प्रशासक तथा कला एवं साहित्य का संरक्षक भी था। प्रसिद्ध जैन आचार्य अकलंक भट्ट जिसने राजवार्तिक व अन्य ग्रन्थों की रचना की थी इनके संरक्षण में था। उसने अपने शासनकाल में चांदी के सिक्के चलाये। ऐलोरा का प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर उसकी कलाप्रियता का एक अनुपम उदाहरण है।

गोविन्द द्वितीय- (773-780 ई.)-कृष्ण प्रथम की मृत्यु के बाद 773 ई. में युवराज गोविन्द द्वितीय गद्दी पर बैठा (युवराज काल 770-72 ई) में उसने वेंगी के चालुक्यों को परास्त करके अपनी दक्षता का परिचय दिया। पिम्पेरी एवं धुलिया दान पत्रों के अनुसार उसने अपने अनुज ध्रुव को नासिक-खानदेश राज्य का शासक नियुक्त किया था जिसका लाभ उठाकर ध्रुव ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। कृष्णा प्रथम का उत्तराधिकारी गोविन्द द्वितीय भोग-विलासी था। उसने शासन का उत्तरदायित्व अपने छोटे भाई ध्रुव को सौंप दिया जिसका लाभ उठाकर ध्रुव ने स्वयं सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

ध्रुव -(780-793 ई.)-धुलिया ताम्रपत्र अभिलेख के विवरण से ज्ञात होता है कि ध्रुव 779 ई. तक अपने अग्रज गोविन्द द्वितीय के अधीन शासक था। डॉ. अल्तेकर ने ध्रुव द्वारा सत्ता-अधिग्रहण की विधि 780 ई. के लगभग स्वीकार किया है। ध्रुव एक महान् सम्राट सिद्ध हुआ। ध्रुव को धारावर्ष भी कहा जाता था। उसने पल्लव-शासक दन्तिवर्मन और वेंगी के चालुक्य-शासक विष्णुवर्धन चतुर्थ को परास्त करके दक्षिण भारत में अपनी श्रेष्ठता को स्थापित किया। उसने उत्तर-भारत पर भी आक्रमण किया। उसने प्रतिहार-शासक वत्सराज को झाँसी के निकट परास्त किया और उसके पश्चात् बंगाल के पाल-शासक धर्मपाल को भी परास्त किया। उत्तर भारत के इन दोनों शक्तिशाली राज्यों को परास्त करके उसने कन्नौज पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु ध्रुव उत्तर-भारत की अपनी विजयों को संगठित न कर सका। वह दक्षिण-भारत वापस आ गया। तब भी ध्रुव के अन्तिम समय तक राष्ट्रकूटों की शक्ति बहुत श्रेष्ठ हो गयी थी। मैसूर के राज्य का गंगवंशीय युवराज उसकी कैद में था, पल्लव-शासक ने उसको धन देकर अपनी जान बचाई थी, प्रतिहार वत्सराज उससे परास्त होकर राजपूताना में शरण लेने के लिए बाध्य हुआ था और पालवंशीय धर्मपाल की शक्ति पराजित होने के पश्चात् बिहार और बंगाल तक ही सीमित रह गयी थी। उस समय भारत में एक भी ऐसा सम्राट न था जो ध्रुव का मुकाबला कर पाता।

राष्ट्रकूट अभिलेखों में ध्रुव के चार पुत्रों का वर्णन प्राप्त होता है। स्तम्भ, कर्क, गोविन्द तथा इन्द्र। इनमें सबसे अधिक योग्य राजकुमार गोविन्द तृतीय था। राधेनपुर ताम्रपत्र लेख के अनुसार ध्रुव ने उसे सहर्ष अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।

गोविन्द तृतीय (793-814 ई.) -गोविन्द तृतीय ने अपने पिता की कीर्ति को आगे बढ़ाया। वह भी एक महान् सेनापति और यशस्वी शासक सिद्ध हुआ। गोविन्द के बड़े भाई स्तम्भ ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया परन्तु असफल हुआ। गोविन्द ने उसे गंग-राज में अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। गोविन्द ने उत्तर भारत में राष्ट्रकूटों के सम्मान को पुनः स्थापित किया। उसके पिता ध्रुव के वापस आ जाने के पश्चात् प्रतिहार-शासक वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने अपने राज्य का विस्तार कर लिया था और पाल-शासक धर्मपाल ने कन्नौज के शासक इन्द्रायुध को परास्त करके चक्रायुध को अपनी अधीनता में कन्नौज का शासक बना दिया था इस कारण उत्तर भारत में राष्ट्रकूटों का प्रभाव नष्ट हो गया था। गोविन्द ने उत्तर-भारत पर आक्रमण करके धर्मपाल और

चक्रायुध का अपनी अधीनता मानने के लिए बाध्य किया और नागभट्ट द्वितीय के विरोध करने पर उसे बुन्देलखण्ड में किसी स्थान पर परास्त किया। इस प्रकार एक बार पुनः उत्तर भारत में राष्ट्रकूटों की प्रतिष्ठा स्थापित होगी यद्यपि नागभट्ट द्वितीय ने गोविन्द के दक्षिण-भारत वापस आ जाने के पश्चात् पुनः अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया तथा कन्नौज को भी अपनी अधीनता में ले लिया परन्तु गुजरात और मालवा पर राष्ट्रकूटों का अधिकार रहा। दक्षिण भारत में गोविन्द ने वेंगी में अपने समर्थक भीम को विक्रमादित्य द्वितीय के विरुद्ध शासक बनाने में सफलता पायी, पल्लव, पाण्ड्य केरल और गंग-शासकों के सम्मिलित संगठन को नष्ट किया और काँची तक अपना राज्य बढ़ाया। श्रीलंका के राजा ने आतंकित होकर उससे मित्रता कर ली। इस प्रकार, गोविन्द तृतीय राष्ट्रकूट-शासकों में सबसे महान् हुआ। उसकी सेनाओं ने कन्नौज से लेकर कुमारी अन्तरीप तक विजय प्राप्त की तथा बनारस से लेकर भड़ौच तक का सम्पूर्ण प्रदेश उसके आधिपत्य में हो गया।

शर्व अथवा अमोघवर्ष प्रथम (814-878 ई.) -अमोघवर्ष स्वयं एक योग्य सेनापति न था परन्तु तब भी उसने अपने सेनापतियों की सहायता से वेंगी के चालुक्य-शासकों को परास्त किया। परन्तु वह युद्ध से अधिक शासन में सफल हुआ। उसने अपने राज्य में शान्ति स्थापित रखी, मान्यखेट का नगर बसाया, विद्वानों को आश्रय दिया और सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु रहा। वह स्वयं विद्वान था और उसने कविराज-मार्ग नामक ग्रन्थ की रचना की। यह कन्नड़ भाषा का ग्रन्थ था। इसके अतिरिक्त उसने आदिपुराण के रचनाकार जिनसेन, गणित सार संपह के रचनाकार महावीराचार्य एवं अमोघवृत्ति के रचनाकार सक्तायना को अपने दरबार में आश्रय दिया।

कृष्णा द्वितीय (878-914 ई.)-कृष्णा को वेंगी के चालुक्य-शासकों के विरुद्ध सफलता प्राप्त हुई। परन्तु प्रतिहार-शासक भोज और चोल-शासक से उसे पराजित होना पड़ा। भोज ने उससे मालवा और काठियावाड़ को छीनने में सफलता प्राप्त की।

कृष्णा द्वितीय के पश्चात् इन्द्र तृतीय (914-927 ई), गोविन्द चतुर्थ (927-930) और अमोघवर्ष तृतीय (936-939 ई) का समय बहुत अधिक सफल न रहा।

उसके पश्चात् कृष्णा तृतीय (939-967 ई) ने पुनः राष्ट्रकूटों की प्रतिष्ठा को स्थापित किया। उसने गंग-राजा की सहायता लेकर चोल-राज्य पर आक्रमण किया और काँची तथा तंजौर को अपने अधिकार में किया। उसने वेंगी को विजय किया तथा उत्तर भारत में प्रतिहारों को दो बार परास्त किया। यद्यपि उत्तर-भारत में उसकी सफलता अधिक न थी परन्तु दक्षिण भारत में उसका साम्राज्य रामेश्वरम तक फैल गया। परन्तु कृष्णा तृतीय का समय राष्ट्रकूटों की सफलता का अन्तिम समय था। उसके उत्तराधिकारी खोट्टिंग (967-972 ई.) के समय में परमार- शासक सीयक द्वितीय ने मान्यखेट पर आक्रमण करके उसे लुटा। खोट्टिंग के उत्तराधिकारी कर्क द्वितीय (972-975 ई) के समय में उसकी अयोग्यता का लाभ उठाकर उसके चालुक्य-सामन्त तैल द्वितीय ने उसे परास्त

करके राष्ट्रकूटों के साम्राज्य पर अधिकार कर लिया और कल्याणी के चालुक्य-वंश के साम्राज्य की नींव डाली |

2. राष्ट्रकूट-वंश की उपलब्धियाँ (Achievements of Rashtrakuta Dynasty)

दक्षिण भारत के राजनीतिक इतिहास में राष्ट्रकूट-शासकों का समय अत्यधिक गौरवपूर्ण है | दक्षिण भारत के किसी अन्य राजवंश ने इतने लम्बे समय तक इतने बड़े साम्राज्य का निर्माण नहीं किया और न किसी राजवंश के शासकों ने इतने सफल युद्ध किये। डॉ. ए. एस. अलेकर ने लिखा है : "दक्षिण भारत के किसी अन्य राजवंश ने 18वीं सदी में एक साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में मराठों के उत्थान के समय से पहले भारत के इतिहास में इतना अधिक प्रभावपूर्ण भाग नहीं लिया। दक्षिण भारत में इस वंश के शासकों ने सदर दक्षिण तक आक्रमण किये और कृष्णा द्वितीय ने रामेश्वरम् तक पहुँचकर अपनी कीर्ति की स्थापना की। इसके शासक उत्तर भारत में आक्रमण करने वाले दक्षिण भारत के पहले शासक थे। सम्राट ध्रुव और गोविन्द तृतीय ने उत्तर भारत के शक्तिशाली प्रतिहारों और पालों को परास्त किया तथा उत्तर भारत की राजनीति को गम्भीरता से प्रभावित किया। राष्ट्रकूट-शासकों ने भारत के तत्कालीन शक्तिशाली शासकों में से सभी को किसी न किसी समय परास्त किया। निस्सन्देह, समय-समय पर उनकी पराजय भी हुई परन्तु उसके शक्तिशाली सम्राटों का समय निर्विवाद सफलता का रहा और उन्होंने समय-समय पर उत्तर भारत के शक्तिशाली प्रतिहार और पाल-शासकों तथा दक्षिण भारत के चालुक्यों और चोल-शासकों को परास्त किया। गुप्तशासकों के पश्चात् युद्धों में इतनी अधिक सफलता भारत के हिन्दू शासकों में किसी अन्य राजवंश के शासकों ने प्राप्त नहीं की।

राष्ट्रकूट-शासकों ने 'रामेश्वर', 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज' आदि उपाधियाँ ग्रहण की। इस प्रकार, वे अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि और सर्वशक्तिशाली मानते थे। सम्राट का पद पैतृक था और साधारणतया सबसे बड़ा पुत्र अथवा युवराज राज्य का उत्तराधिकारी होता था। राजा युवराज के अतिरिक्त अपने अन्य पुत्रों को प्रायः प्रान्तपति या राज्यपाल नियुक्त करता था। राजकुमारियों को भी कभी-कभी उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया जाता था। परन्तु राजा निरंकुश न थे। वे राजधर्म के आधार पर शासन करते थे और प्रजा की सुरक्षा तथा भलाई उनका प्रमुख कर्तव्य था। राजा की सहायता के लिए मन्त्री और अन्य बड़े अधिकारी होते थे।

प्रशासन की दृष्टि से राष्ट्रकूट शासन अनेक इकाइयों में विभक्त किया गया था जिनमें 'राष्ट्र' एवं 'विषय' प्रमुख थे। डॉ. अलेकर के अनुसार ये सम्भवतः आधुनिक कमिश्नरी एवं जिलों के समान थे। राष्ट्र का प्रधान राष्ट्रपति कहलाता था जिसके अधीन सैनिक एवं नागरिक दोनों का प्रशासनिक कार्य था। मुख्यतः वह राष्ट्र में शान्ति स्थापना एवं कानून व्यवस्था की देखरेख करना था। 'राष्ट्रपति' राजस्व एवं कर निर्धारण के साथ-साथ राजस्व संग्रह का भी कार्य देखते थे। वे भूमि व्यवस्था, कर-संग्रह इत्यादि कार्यों में सहायता के लिए 'विषयों' एवं तहसीलों के अधिकारियों की नियुक्ति करते थे।

'विषयों के प्रबन्ध के लिए राष्ट्रपति राजा की आज्ञा से विषयपतियों की नियुक्ति करता था। प्रायः एक 'विषय' में 1000 से लेकर 4000 तक ग्राम होते थे। प्रत्येक 'विषय' कई 'भुक्तियों' में बँटा होता था तथा प्रत्येक भुक्ति' में 50 में 70 तक ग्राम होते थे। तहसील के अधिकारी को भोगपति कहा जाता था।

राष्ट्रकूट शासन प्रणाली में ग्राम प्रशासन का कार्य प्रायः ग्राम प्रधान तथा पटवारी के द्वारा संचालित किया जाता था। ये पद प्रायः वंशानुगत थे। मुखिया ग्राम-सुरक्षा, कर-संग्रह तथा चोर-डाकओं से बचाव के लिए अपनी छोटी-सी सेना भी रखता था। मुखिया एवं पटवारी को कर मुक्त भूमि प्रदान की जाती थी। ग्राम सभाओं को जनकल्याण के कार्य हेतु ग्राम राजस्व से एक हिस्सा प्रदान किया जाता था। नगरो के प्रबन्धन के लिए भी ऐसी ही सभाएं होती थी। दीवानी आदि मुकदमों का फैसला भी इन्हीं सभाओं के द्वारा किया जाता था जिनके निर्णय उच्च न्यायालयों को भी मान्य थे।

राष्ट्रकूट साम्राज्य में आय का मुख्य स्रोत 'भूमिकर' था। राष्ट्रकूट अभिलेखों में इसे 'भाग कर' या 'उदंग' कहा जाता था। सामान्य रूप से कृषि उपज का एक-चौथाई भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था। मन्दिरों एवं ब्राह्मणों को दान में दी गई भूमि पर यह कर प्रदेश निश्चित राशि का प्रायः अर्द्धांश ही लिया जाता था और कभी-कभी यह कर सम्पूर्ण रूप से माफ होता था।

राष्ट्रकूट-शासकों ने सांस्कृतिक प्रगति में सहयोग दिया। धार्मिक दृष्टि से अधिकांश राष्ट्रकूट-शासक हिन्दू धर्म को मानने वाले थे। उन्होंने वैदिक धर्म के अनुसार विभिन्न यज्ञ किये और पौराणिक हिन्दू धर्म के अनुसार विभिन्न हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। उनके समय में हिन्दू धर्म की प्रगति हुई यद्यपि उनमें से कुछ ने जैन धर्म को संरक्षण दिया। परन्तु राष्ट्रकूट-शासक धार्मिक दृष्टि से बहुत उदार थे। उन्होंने जिन मन्दिरों का निर्माण किया उनमें शिव, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी आदि सभी देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की गयीं। अन्य धर्मों के प्रति भी उनका व्यवहार सहिष्णुता का था। सम्राट अमोघवर्ष महावीर और लक्ष्मी दोनों को ही समान रूप से मानता था। कृष्णा द्वितीय के सामन्त पृथ्वीराज और उसके पुत्र ने जैन-मन्दिरों का निर्माण कराया जबकि उनके प्रपौत्र हिन्दू हुए। इस्लाम धर्म को मानने वाले अरबों के प्रति भी राष्ट्रकूट-शासक उदार रहे। उन्होंने अरबों को अपने धर्म को मानने तथा व्यापार करने की पूर्ण सुविधा प्रदान की थी। निस्सन्देह, उनके समय में बौद्ध धर्म अवनति पर था परन्तु इसका कारण उसकी स्वयं की दुर्बलता थी।

राष्ट्रकूट-शासक शिक्षा और साहित्य की प्रगति में रुचि लेते थे। उनके समय में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त कन्नड़ भाषा की भी प्रगति हुई। राष्ट्रकूट-शासकों ने हिन्दू और जैन दोनों धर्मों के विद्वानों का सम्मान किया। जिनसेन ने हरिवंश और पाशर्वाभ्युदल की रचना की, शाक्तायन ने अमोघशक्ति और वीराचार्य ने गणितसार संग्रह लिखा। ये सभी विद्वान सन्मान अमोघवर्ष प्रथम के दरबार में थे जो स्वयं एक विद्वान था और जिसने स्वयं कन्नड़ भाषा में कविराज-मार्ग नामक

ग्रन्थ लिखा था। इसके अतिरिक्त, कन्नड़ भाषा के तीन विद्वान(रत्न) पोन्ना, पम्मा और रत्ना भी इसी काल में हुए।

राष्ट्रकूट-शासकों ने कला के क्षेत्र में किसी नवीन शैली को जन्म नहीं दिया परन्तु तब भी उसके समय में बहुत से मन्दिर और मूर्तियाँ बनायी गयीं। उनके द्वारा बनवाये गये मन्दिरों में से अब केवल एक मन्दिर प्राप्त होता है वह एलोरा का प्रख्यात कैलाश मन्दिर है। पहाड़ी चट्टानों को काटकर बनाया गया यह विशाल मन्दिर वास्तु-कला का एक श्रेष्ठ नमूना है। इसका परिसर लगभग 276 फुट लम्बा 154 फुट चौड़ा रखा गया है। इसके पार्श्व में 107 फुट ऊँचा ढलान है। यह मन्दिर द्वितलाय है। इसके स्तम्भ 'नागर (उत्तर भारतीय) शैली के स्तम्भों से अनुप्राणित है। मन्दिर का शेष भाग द्राविड (दक्षिण भारतीय) शैली पर आधारित है। इस मन्दिर में विमान, मण्डप, अन्तराल, नन्दीमण्डप तथा गोपुरम आदि एक ही अक्ष पर नराशे गए हैं। मन्दिर के स्तम्भ नितान्त भव्य एवं अलंकृत हैं। डॉ. स्मिथ ने उसे भारत के वास्तु-आश्चर्यों में सर्वाधिक विस्मयजनक माना है। इस मन्दिर के भित्ति-चित्रों में 'गंगावतरण' और रावण द्वारा कैलाश पर्वत के उठाये जाने के चित्र अत्यन्त सुन्दर और सजीव हैं।

राष्ट्रकूट-कालीन गुहा अथवा दरी मन्दिरों की निर्माण-परम्परा में ऐलोरा का प्रसिद्ध विश्वकर्मा बौद्ध-गुहा मन्दिर का निर्माण हुआ। यहाँ के अन्य उल्लेखनीय मन्दिरों में दशावतार, देववाड़ा, रावण की खाई, नीलकण्ठ, रामेश्वर एवं धूमरलेण आदि अपनी निर्माण योजना एवं कलात्मक भव्यता में बेजोड़ हैं। इन मन्दिरों में पौराणिक देवों की मूर्तियों की स्थापना भारतीय स्थापत्य की अक्षय निधि है।

इसी प्रकार, राष्ट्रकूट-शासकों ने दक्षिण-भारत को ही नहीं बल्कि समकालीन उत्तर-भारत की राजनीति को भी प्रभावित किया। निस्सन्देह, उत्तर-भारत की राजनीति में उनका हस्तक्षेप लाभदायक न रहा क्योंकि उत्तर भारत में उनके आक्रमणों के कारण प्रतिहारों को एक शक्तिशाली सार्वभौमिक राज्य के निर्माण में कठिनाई हुई जो देश के लिए हानिकारक रही। परन्तु तब भी राष्ट्रकूट-शासकों ने यश और शक्ति अर्जित की। दक्षिण भारत की राजनीति और सांस्कृतिक प्रगति में उनका प्रभाव, निस्सन्देह, अधिक प्रभावपूर्ण सिद्ध हुआ।